ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

धार्मिक अनुष्ठानों का सामाजिक और दार्शनिक महत्व

डॉ चन्द्र प्रकाश जोशी

व्याख्याता, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, अजमेर

सार

छठी शताब्दी ईसा पूर्व दुनिया के विभिन्न हिस्सों में कई धार्मिक आंदोलनों का गवाह बना। इओनिया द्वीप में हेराक्लिटस, फारस में जोरोस्टर और चीन में कन्फ्यूशियस ने नए सिद्धांतों का प्रचार किया। भारत में भी, हम नए विचारों की उथल-पुथल पाते हैं, जिससे नए दार्शनिक सिद्धांतों और धार्मिक संप्रदायों का उदय होता है।वे बहुत अधिक और बहुत अधिक विविध थे क्योंकि दार्शनिक अनुमान धार्मिक अटकलों से लेकर थे और सत्य की खोज की लालसा जो उपनिषदों ने बनाई थी, इस सदी में इसके परिणामों के बारे में लाया।पुराना वैदिक धर्म एक जीवित शक्ति बन गया था और महंगे धार्मिक अनुष्ठानों और खूनी बलिदानों के खिलाफ व्यापक असंतोष था। सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ घृणा विशेष रूप से सुदास की दयनीय स्थितियों के खिलाफ प्रचलित थी।

सामाजिक और आर्थिक जीवन की बदलती विशेषताएं जैसे कस्बों का विकास; विभिन्न व्यवसायों के विकास से कारीगर वर्ग का विस्तार और कृषि का विकास, जो कि कृषि के साधनों सहित उपकरणों और उपकरणों के उत्पादन के लिए लोहे के व्यापक उपयोग के कारण संभव हो सकता है; और व्यापार और वाणिज्य के तेजी से विकास ने भी समाज और धर्म में बदलाव लाने की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित किया।नए विचारों ने स्थापित सामाजिक व्यवस्था को विशेष रूप से जाति-व्यवस्था, धार्मिक अनुष्ठानों और बलिदानों, ब्राह्मणों के वर्चस्व, विशेष रूप से क्षत्रियों और समाज के सभी मृत रीति-रिवाजों को चुनौती दी। अकेले क्षत्रियों को शस्त्र धारण करने का अधिकार था। वे राज्य की सुरक्षा, उसके भीतर शांति के रखरखाव और कृषि, व्यापार और वाणिज्य के कल्याण की देखभाल करते थे।

परिचय

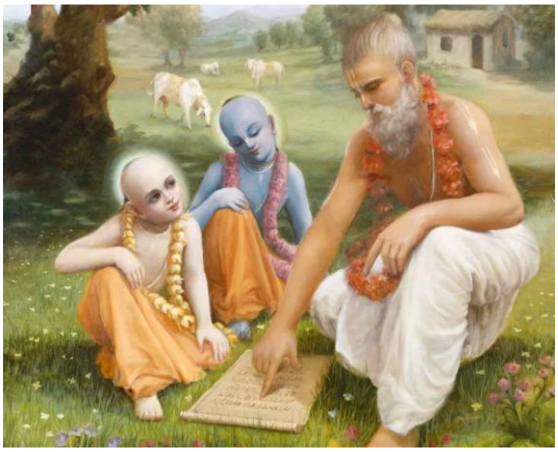

18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चली, जिसके फलस्वरूप जागृति के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा की भावना ने यूरोपीय समाज को प्रगति प्रदान की। भारत का एक नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग भी तर्कवाद, विज्ञानवाद

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

तथा मानववाद से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका। इन पाश्चात्य शिक्षित भारतीयों ने इस नवज्ञान से प्रभावित होकर सामाजिक एवं धार्मिक सुधार का कार्य प्रारंभ किया।[1,2]

तर्कवाद व नवचेतना के इस आधार पर परिवर्तन की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुयी उसे **पुनर्जागरण (Renaissance)** की संज्ञा दी गयी। पुनर्जागरण की प्रक्रिया में पुरातन मान्यताओं एवं विश्वासों पर प्रहार किये गये तथा विभिन्न कुरीतियों का परित्याग कर नवज्ञान एवं नयी मान्यताओं को अपनाने पर बल दिया गया। भारत की भूमि पर उपनिवेशी शासन के प्रभाव ने आधुनिक भारतीय इतिहास के अत्यंत संवेदनशील चरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ब्रिटिश शासन के तले भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया तथा वह अपनी परंपरागत छवि से दूर हो गया। अंग्रेजों से पूर्व जितने भी बाह्य आक्रमणकारी भारत आये या तो वे भारतीय समाज एवं संस्कृति में कोई दूरगामी प्रभाव नहीं डाल सके या फिर यहीं की सभ्यता एवं संस्कृति में समाहित हो गये। किंतु अंग्रेजों का भारत में आगमन ऐसे समय में हुआ जब यूरोप में आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति की बयार बह रही थी एवं मानवतावाद, तर्कवाद, विज्ञान एवं वैज्ञानिक अन्वेषण अपनी महत्ता स्थापित करते जा रहे थे।19वीं शताब्दी में भारतीय समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों से जकड़ा हुआ था। हिन्दू समाज बुराइयों, बर्बरता एवं अंधविश्वासों से ओतप्रोत था। पुरोहित, समाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुये थे तथा जनसामान्य पर विभिन्न कर्मकांडों तथा निरर्थक धार्मिक कृत्यों की सहायता से वर्चस्व स्थापित कर चुके थे। उन्होंने शिक्षा, ज्ञान एवं धार्मिक क्रियाकलापों को अपना विशाधिकार बताया तथा इनकी सहायता से जनसामान्य के man मष्तिष्क पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा की।[3,4]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था भी इतनी ही दयनीय थी। समाज में सबसे निम्न स्थिति स्त्रियों की थी। लड़की का जन्म अपशकुन, उसका विवाह बोझ एवं वैधव्य (widowhood) श्राप समझा जाता था। जन्म के पश्चात बालिकाओं की हत्या कर दी जाती थी। स्त्रियों का वैवाहिक जीवन अत्यंत दयनीय एवं संघर्षपूर्ण था। यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती थी तो उसे बलपूर्वक पति की चिता में जलने को बाध्य किया जाता था। इसे 'सती प्रथा' के नाम से जाना जाता था। राजा राममोहन राय ने इसे **शास्त्र की आड़ में हत्या** की संज्ञा दी। सौभाग्यवश यदि कोई स्त्री इस क्रूर प्रथा से बच जाती थी तो उसे शेष जीवन अपमान, तिरष्कार, उत्पीड़न एवं दुख में बिताने पर बाध्य होना पड़ता था।जाति प्रथा भी समाज की एक महत्वपूर्ण बुराई थी। वर्ण या जाति का निर्धारण वैदिक कर्मकाण्डों के आधार पर होता था। इस जाति व्यवस्था की सबसे निचली सीढ़ी पर अनुसूचित जाति के लोग थे, जिन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। तथा अछूत माना जाता था। इन **अछूतों या अश्पृश्यों, की संख्या पूरी हिन्दू जनसंख्या का 20 प्रतिशत से भी अधिक थी**। अश्पृश्य, भेदभाव एवं अनेक प्रतिबंधों के शिकार थे। इस व्यवस्था ने समाज को कई वर्गों या समूहों में विभक्त कर दिया। हुयी।

वर्ग-चेतना ने धीरे-धीरे अन्य संप्रदाय के लोगों को हिन्दुओं से पृथक करना प्रारंभ कर दिया। कालांतर में हिन्दू समाज की इस जाति व्यवस्था ने कई अन्य क्षेत्रों में विसंगतियां एवं कठिनाइयां पैदा कीं। अश्पृश्यता की कुरीति ने इस वर्ग के लोगों को समाज से लगभग पृथक कर दिया। मानव सभ्यता एवं प्रतिष्ठा पर यह कुरीति एक शर्मनाक धब्बा था।[5,6]

विचार – विमर्श

भारत में उपनिवेशी शासन की स्थापना के पश्चात देश में अंग्रेजी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार हेतु सुनियोजित प्रयास किये गये। शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण ने भी लोगों के विचारों को प्रभावित किया। इन नवीन विचारों के विक्षोभ ने भारतीय संस्कृति में प्रसार की भावना उत्पन्न की तथा ज्ञान का प्रसार हुआ। आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति एवं विदेशी शक्तियों को पराजित करने की चेतना ने जागृति की नयी किरण फैलायी। धीरे-धीरे यह चेतना जागृत होने लगी कि भारतीय सामाजिक संरचना एवं संस्कृति में दुर्बलता के कारण भारत जैसा विशाल देश मुट्ठीभर विदेशियों के हाथों में चला गया है। यह भी महसूस किया जाने लगा। कि भारत सभ्यता की दौड़ में काफी पिछड़ गया है। इस सोच ने एक प्रतिक्रियावादी स्वरूप को जन्म दिया।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

इसी समय कुछ पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त बंगाली नवयुवकों ने इस सोच से अभिप्रेरित होकर की भारत सभ्यता एवं विकास में काफी पीछे छूटता जा रहा है, प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों पर कुठाराघात किया तथा मांस एवं शराब के सेवन जैसे खान-पान के पाश्चात्य तरीकों को अपना लिया। इससे यह अवश्य परिलक्षित होने लगा कि शायद भारतीय समाज अब सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर से गुजरने वाला है।19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद के उफान ने कर दिया। इन कारकों ने शीघ्र ही पुनर्जागरण की प्रक्रिया के उद्भव एवं विकास के आर्थिक शक्तियों के अभ्युदय, शिक्षा के प्रसार, आधुनिक पाश्चात्य मूल्यों एवं संस्कृति के प्रभाव तथा विश्व समुदाय को सशक्त करने की सोच ने **सुधार (Reform)** के मार्ग को प्रशस्त किया।

भारत में 19वीं शताब्दी में सामाजिक-धार्मिक सुधारों की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुयी वह उपनिवेशी शासन की उपस्थिति का ही प्रभाव था। लेकिन कहीं भी उपनिवेशी शासकों ने इसे प्रारंभ नहीं किया।
भारत में जो सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन प्रारंभ हुये उसका मुख्य सामाजिक आधार उभरता हुआ मध्य वर्ग एवं परम्परागत साथ ही पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त बौद्धिक वर्ग था। किंतु पश्चिम में जन्मी तत्कालीन चेतना एवं बुर्जुआई मूल्यों तथा पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त बुर्जुआ रहित सामाजिक आधार में महत्वपूर्ण टकराव था।19वीं शताब्दी के बौद्धिक वर्ग में जो मुख्यतया यूरोप का मध्य वर्ग था, एवं प्रथाओं को वर्तमान समय हेतु प्रासंगिक बनाने की तीव्र इच्छा जागृत हुयी। तब उन्होंने पुनर्जागरण एवं धर्म-सुधार जैसी विचारधारा का सहारा लेकर समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन किया। पुनर्जागरण एवं धर्म-सुधार की प्रक्रिया में जिस वर्ग ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, वह कोई औद्योगिक या व्यापारी वर्ग नहीं था अपितु वे सरकारी कार्यालय में कार्यरत व्यक्ति, शिक्षक, पत्रकार, वकील एवं चिकित्सक जैसे लोग थे जिनके हित कहीं न कहीं पर एक-दूसरे के समान थे।[7,8]

वे महत्वपूर्ण आधार, जिन्होंने सुधार आंदोलनों को वैचारिक धरातल प्रदान किया उनमें धार्मिक सार्वभौमिकता, मानववाद एवं तर्कवाद प्रमुख थे। सामाजिक प्रासंगिकता को तर्कवाद के रूप में मान्यता दी गयी। राजा राममोहन राय ने स्पष्ट किया कि सभी धर्मों में विश्वास, एकता में आस्था, निर्गुण ईश्वर की उपासना एवं जाति प्रथा में अविश्वास ही सर्वप्रमुख कारक हैं। उन्होंने प्राचीन विशेषज्ञों को उद्धृत किया तथा मानवीय तर्कशक्ति में आस्था प्रकट की जो उनके विचार से प्राच्य या पाश्चात्य किसी भी सिद्धांत की अंतिम कसौटी है। अक्षय कुमार दत्त ने भी स्पष्ट किया कि **तर्कवाद या हेतुवाद ही हमारा मुख्य अभिप्रेरक तत्व** है। उन्होंने बताया

Copyright to IJIRSET
DOI:10.15680/IJIRSET.2015.0404122

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

कि समस्त प्राकृतिक एवं सामाजिक मान्यताओं को यांत्रिक प्रक्रिया की तरह समझना एवं विश्लेषित करना चाहिए। इन्हीं मान्यताओं एवं विश्वासों का प्रतिफल था कि जहां एक ओर, ब्रह्म समाज का यह मानना था कि कोई भी पुस्तक न तो ईश्वर है न ही देवी-देवता है, क्योंकि कोई भी पुस्तक पूर्णतया त्रुटिविहीन नहीं हो सकती चाहे वह धार्मिक ही क्यों न हो। वहीं दूसरी ओर, अलीगढ़ आंदोलन में जोर दिया गया कि इस्लामिक शिक्षाओं की व्याख्या वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिये। सर सैय्यद अहमद खान ने मुस्लिम धर्म की कुरीतियों पर कड़े प्रहार किये तथा उन्हें तत्कालीन परिस्थितियों में अप्रासंगिक बताया।कई अन्य बुद्धिजीवियों तथा चिंतकों ने भी धर्म एवं संस्कृति के परम्परागत स्वरूप को बदलने की पहल की तथा सत्यता, प्रासंगिकता एवं तर्कवाद के आधार पर उसे पुनर्व्याख्यायित करने पर जोर दिया। स्वामी विवेकानंद के भी धार्मिक विचार अत्यधिक प्रगतिशील एवं भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप थे। उन्होंने भारतीय दर्शन एवं उसकी श्रेष्ठ परम्परा को सर्वोपरि घोषित किया। इसी समय विभिन्न वैज्ञानिक अन्वेषणों एवं वैज्ञानिक तर्कों को भी चिंतकों ने अपनी अवधारणाओं को पुष्ट करने का आधार बनाया। उदाहरणार्थ- **अक्षय कुमार दत्त** ने चिकित्सकीय तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि बाल विवाह हानिकारक था। कई अन्य मान्यताओं को भी विज्ञानवाद के आधार पर अप्रासंगिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया।[9,10]

परिणाम

यद्यपि इस काल में धर्म सुधारकों ने अपने धर्म को सुधारने का प्रयत्न किया किन्तु उनका दृष्टिकोण किसी एक धर्म तक ही सीमित न रहकर सार्वभौमिक था। राजा राममोहन राय ने हिन्दू धर्म के अतिरिक्त ईसाई धर्म के भी अनेक गलत रीति-रिवाजों को सार्वजनिक किया। उनका विश्वास था कि मूलतः सभी धर्म एक ही शिक्षा देते हैं। उन्होंने सभी धर्मो की मौलिक एकता पर बल दिया तथा एकेश्वरवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया। सर सैय्यद अहमद खान का मानना था कि सभी धर्मो का मूल उद्देश्य एक ही है। भले ही उनका तरीका भिन्न-भिन्न हो। **केशवचंद्र सेन** के विचार भी इस संबंध में उदारवादी थे तथा उन्होंने कहा कि विश्व के सभी धर्म सच्चे हैं।

अंग्रेज सरकार के रवैये ने भी भारतीय समाज में सुधार आंदोलन शुरू करने की प्रेरणा दी। अंग्रेजों की आंतरिक मंशा थी कि भारतीय समाज के एक वर्ग को ऐसे पाश्चात्य रंग में रंगा जाये जिससे वे ब्रिटिश हितों की रक्षा कर सकें। अंग्रेज, सरकारी अधिकारियों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना चाहते थे, जो शारीरिक रूप से भारतीय एवं मानसिक रूप से अंग्रेज हो। इस मंशा के पीछे मुख्य बात यह थी कि भारत जैसे विशाल देश में प्रशासन के सफल संचालन हेतु अधिकारियों की एक विशाल फ़ौज की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिये सभी पदों पर अंग्रेजों को नियुक्त करना अत्यंत कठिन कार्य था, फलतः वे चाहते थे कि भारतीय बुद्धिजीवियों का एक ऐसा वर्ग होना चाहिए जो ब्रिटिश हितों का पक्षपोषण कर सके।सामाजिक सुधार आंदोलनों में मानवीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। इस बात को प्रमुखता से इंगित किया गया कि कोई भी परिवर्तन तभी उपयोगी है, जब उससे मानवीय कल्याण के उद्देश्यों की पूर्ति होती हो। इसीलिये इस आंदोलन में ऐसे पाखंडी कर्मकाण्डों को अनावश्यक बताया गया जिससे परेशानियां ज्यादा एवं लाभ कम हों।सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन में सामाजिक सुधारकों का अनेक अवसरों पर धार्मिक अगुआवों से तीव्र टकराव भी हुआ क्योंकि सभी समाज सुधार आंदोलन मुख्यतः धार्मिक आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों की भर्त्सना करते थे।[11,12]

सामाजिक सुधार

19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलन केवल धर्म तक सीमित नहीं रहे अपितु इनका धर्म से ज्यादा प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में पड़ा । भारतीय समाज में कई ऐसी मान्यतायें व प्रथायें विद्यमान थीं जिनका आधार अंधविश्वास व अज्ञान था। इनमें से कई प्रथायें अत्यंत क्रूर व अमानवीय थीं। जैसे-सती प्रथा, बाल विवाह, बाल हत्या इत्यादि। समाज गें अशिक्षा व घोर अंधविश्वास था। पूरा का पूरा सामाजिक ढांचा, अन्याय व असमानता पर आधारित था।ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत का सामाजिक स्वरूप अपरिवर्तनशील एवं स्थिर था। गांव आत्मनिर्भर थे तथा एक संकुचित दायरे में सिमटे हुये थे। सामाजिक व्यवस्था में वर्ण एवं जाति प्रथा अत्यंत सुदृढ़ थी। सम्पूर्ण सामाजिक क्रियाकलापों का निर्धारण जाति के आधार पर ही होता था। ब्रिटिश राज की स्थापना के पश्चात, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार हुआ, जिससे नव जागृति आयी। ब्रिटिश आधिपत्य ने भारत के खोखलेपन एवं फूट को उजागर कर

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

दिया। इसके पश्चात्य चिंतनशील तथा बुद्धजीवी भारतीयों ने समाज की कुरीतियों एवं त्रुटियों को सार्वजनिक किया तथा उन्हें दूर करने के प्रयत्न किये। वे पश्चिमी मानवतावाद, तकंवाद, राष्ट्रवाद एवं विज्ञानवाद से गहरे प्रभावित हुये। इन बुद्धजीवियों के पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन कर इसकी कमियों की ओर ध्यान इंगित किया। पक्षपातपूर्ण अंग्रेजी व्यापारिक नीतियों के फलस्वरूप नये बिचौलियो तथा व्यापारियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ जिसमें अंग्रेजों से सम्पर्क के कारण पाश्चात्य विचारों का प्रसार हुआ। अंग्रेजी को शिक्षा का अनिवार्य माध्यम बनाये जाने से एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिसने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त कर पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन किया तथा भारतीय समाज एवं संस्कृति की खामियों का पता लगाया। हालांकि भारत में आधुनिक ढंग की पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं तथा उपन्यास इत्यादि के प्रकाशन का श्रेय अंग्रेजों को ही है।[13]

स्त्रियों की दशा में सुधार के प्रयास

समाज सुधारकों ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। समाज में स्त्रियों की दशा अत्यंत सोचनीय थी तथा उन्हें पुरुषों से नीचा समझा जाता था। समाज में स्त्रियों की अपनी कोई पहचान नहीं थी तथा उनकी ऊर्जा एवं योग्यता पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं बाल विवाह जैसी बुराइयों की बलि चढ़ गये थे। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों ही समाज में महिलायें आर्थिक तथा सामाजिक रूप से पुरुषों पर आश्रित थीं। उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की मनाही थी। हिन्दू स्त्रियों को सम्पति का कोई अधिकार नहीं था तथा विवाह में उनकी सहमति नहीं ली जाती थी।मुस्लिम स्त्रियों को हालांकि सम्पति का अधिकार था परंतु उन्हें पुरुषों की तुलना में आधी सम्पति ही दी जाती थी। लेकिन तलाक में पुरुष और महिलाओं में बहुत ज्यादा भेदभाव किया जाता था। बहुपत्नी प्रथा हिन्दू एवं मुसलमान दोनों समुदायों में प्रचलित थी।

सती प्रथा

राजा मोहन राय ने सती प्रथा को स्त्रियों के साथ किया गया घोर अन्याय बताते हुये इसे समस्त हिन्दू समाज के लिये शर्मनाक कहा। उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि सरकार ने सती प्रथा को दण्डनीय अपराध घोषित किया तथा ऐसा करने वालों को दण्ड देने का नियम बनाया। सरकार ने स्त्री को बलपूर्वक जलाये जाने की हत्या के बराबर अपराध घोषित कर दिया तथा इस प्रथा को प्रोत्साहित करने वालों पर फौजदारी मुकदमा चलाने की घोषणा की।**1829** में सती प्रथा के विरुद्ध एक कानून पास करके इसके **17वें नियम** के अनुसार विधवाओं का जीवित जलाना बंद कर दिया गया। **सबसे पहले यह नियम बंगाल** में लागू किया गया फिर 1830 में यह **मद्रास** एवं **बंबई** में भी लागू कर दिया गया।[14]

निष्कर्ष

शिशु वध

यह क्रूर प्रथा **बंगालियों** एवं **राजपूतों** में प्रचलित थी। इस प्रथा के अनुसार आर्थिक बोझ मानकर या अन्य कारणों से बालिकाओं की बचपन में ही हत्या कर दी जाती थी। प्रबुद्ध भारतीयों तथा अंग्रेज दोनों ने ही इस प्रथा की तीव्र आलोचना की। अंततः कानून बनाकर शिशु हत्या को साधारण हत्या के बराबर अपराध मान लिया गया। भारतीय रियासतों के रेजीडेंटों से भी कहा गया कि वे ऐसे मामले को सदोष मानव हत्या के बराबर अपराध माने। **1795 में बंगाल में 21वें अधिनियम** तथा **1804 में तीसरे अधिनियम** के अनुसार कानूनी तौर पर शिशु हत्या को मानव हत्या के बराबर अपराध घोषित कर दिया गया। 1870 में इस प्रथा को रोकने के लिये कुछ और कानून बनाये गये।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

विधवा पुनर्विवाह

यह ब्रह्म समाज के कार्य क्षेत्रों में एक अत्यंत प्रमुख मुद्दा तथा उसने इसे लोकपिय बनाने हेतु सराहनीय कार्य किया। लेकिन इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान **ईश्वरचंद विद्यासागर (1820-91)** का था। ईश्वरचंद विद्यासागर, संस्कृत कालेज कलकत्ता के आचार्य थे। उन्होंने संस्कृत और वैदिक उल्लेखों से यह सिद्ध किया कि वेद, विधवा पुर्नविवाह की अनुमति देते हैं। उन्होंने लगभग 1,000 हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना पत्र सरकार को भेजा। अंततः उनके प्रयत्नों से **1856 में हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम** बना, जिसके अनुसार विधवा विवाह को वैध मान लिया गया और ऐसे विवाह से उत्पन्न हुये बच्चे वैध घोषित किये गये।[15]

बाल विवाह

समाज सुधारकों ने बाल विवाह का भी तीव्र विरोध किया, जिसके फलस्वरूप 1872 में 'नेटिव मेरिज एक्ट' पास किया गया। इसमें 14 वर्ष से कम आयु की कन्याओं का विवाह वर्जित कर दिया गया। लेकिन यह कानून बहुत प्रभावी नहीं हो सका। अंत में एक पारसी धम सुधारक **वी.एम. मालाबारी** के प्रयत्नों से **1891** में **सम्मति आयु अधिनियम** पारित हुआ। जिसमें 12 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह पर रोक लगा दी गयी।

स्त्री शिक्षा

19वीं शताब्दी में समाज में यह भ्रांतिव्याप्त थी कि हिन्दू शास्त्र स्त्री शिक्षा की अनुमति नहीं देते तथा शिक्षा ग्रहण करने पर देवता उसे वैधव्य का दंड देते हैं। इस दिशा में सबसे पहला प्रयास ईसाई मिशनरियों ने किया तथा 1819 में **कलकत्ता तरुण स्त्री सभा** की स्थापना की। 1849 में कलकत्ता एजुकेशन काउंसिल के अध्यक्ष **जे.ई.डी. बेथुन** ने **बेथुन स्कूल** की स्थापना की। बेथुन द्वारा किया गया प्रयास स्त्री शिक्षा की दिशा में की गयी पहली सशक्त पहल थी। किंतु स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में ईश्वरचंद विद्यासागर की देन महान है। वे बंगाल के कम से कम 35 बालिका विद्यालयों से सम्बद्ध थे तथा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उनके कार्यो को सदैव याद किया जायेगा। बंबई के **एलफिंस्टन इंस्टीट्यूट** के भी विद्यार्थियों ने भी स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।1854 के **चार्ल्स वुड के डिस्पैच** में भी स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। [16]

स्वतंत्र भारत में महिलाओं हेतु वैधानिक उपाय

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात निर्मित संविधान में महिलाओं को विधिक समानता के अधिकार दिये गये हैं तथा उनसे किसी भी प्रकार के भेदभाव को रोकने हेतु अनुच्छेद 14 एवं 15 में विभिन्न उपवंध किये गये हैं। **1954 के विशेष विवाह अधिनियम** द्वारा अंतर्जातीय एवं अंतर-धर्म विवाह को कानूनी मान्यता दी गयी। **1955 के हिन्दू मैरिज एक्ट** द्वारा एक पत्नी के रहते हुये पुरुष द्वारा दूसरा विवाह करने पर रोक लगा दी गयी तथा ऐसा करने पर दण्ड एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया। **1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम** द्वारा लड़की को भी पुत्र के बराबर उत्तराधिकारी बनने की व्यवस्था की गयी। **हिन्दू गोद एवं व्यय अधिनियम** द्वारा लड़की को भी इस संबंध में लड़के के बराबर मान लिया गया।

वर्ग आधारित शोषण के विरुद्ध संघर्ष

प्राचीन काल में स्थापित हुई हिन्दू धर्म की चार स्तरीय जाति व्यवस्था या चतुवर्ण व्यवस्था, कालांतर में अनेक जातियों एवं उप-जातियों में विभक्त हो गयी। इसका प्रमुख कारण, प्रजातीय सम्मिलन, भौगोलिक विस्तार एवं व्यवसाय अपनाने की प्रक्रिया में परिवर्तन था।हिंदी चतुवर्ण व्यवस्था के अनुसार, जाति ही किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती है। [17]

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

जातीय कठोरता में कमी आने के कारण

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से जाति या वर्ण व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन आया। अंग्रेजों ने सभी जातियों के लोगों को सेना एवं अन्य प्रशासकीय क्षेत्रों में नियुक्त किया। यद्यपि तत्कालीन उच्च वर्ग के लोगों ने इसे अपना अपमान समझा तथा इसका विरोध भी किया लेकिन, अंग्रेजों की इस नीति से निम्न जाति के लोगों में थोड़ा सुधार अवश्य हुआ। सम्पत्ति के निजी स्वामित्व एवं भूमि के मुक्त क्रय से भी जातीय समीकरणों में परिवर्तन हुये। धीरे-धीरे गांवों की जाति-व्यवस्था में थोड़ा परिवर्तन होने लगा। आधुनिक वाणिज्य एवं व्यवसाय के विकास एवं परिवहन के साधनों में तीव्र वृद्धि से भी सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तन हुये।अंग्रेजों ने ग्राम पंचायतों की जाति पर आधारित न्याय प्रणाली को समाप्त कर आधुनिक न्याय व्यवस्था की स्थापना की जिसमें सभी जातियों के लिये समान न्याय की प्रणाली थी। प्रशासनिक पदों एवं सरकारी कार्यालयों में भर्ती के अवसर भी सभी जाति के लिये खोल दिये गये। अंग्रेजों की शिक्षा व्यवस्था में सभी जातियों की शिक्षा ग्रहण करने के समान अवसर दिये गये।[18,19]

सांस्कृतिक जागरण, सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन एवं उसके नेता

राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज

राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का जनक माना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म **समाज,** जो आधुनिक पाश्चात्य विचारों पर आधारित था, **हिन्दू धर्म का पहला सुधार आंदोलन** था।एक सुधारवादी के रूप में राजा राममोहन राय, मानवीय प्रतिष्ठा के आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं सामाजिक समानता के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। उन्होंने 1809 में **एकश्वरवादियों को उपहार** नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। अपने मत के समर्थन में उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों के बंगाली अनुवाद लिखे तथा स्पष्ट किया कि प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्र भी एकेश्वरवाद का समर्थन करते हैं। 1814 में उन्होंने कलकत्ता में **'आत्मीय सभा'** की स्थापना की तथा मूर्तिपूजा, जातिप्रथा की कठोरता, अर्थहीन रीति-रिवाजों तथा अन्य सामाजिक बुराइयों की भर्त्सना की।

उन्होंने पुरातन हिन्दू शास्त्रों का प्रमाण देकर धार्मिक ठेकेदारों को दिखलाया कि वे सती प्रथा की अनुमति नहीं देते दूसरी ओर उन्होंने लोगों को तर्कशक्ति, नैतिकता, मानवीयता तथा दयाभाव की दुहाई देकर इस कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाने के लिये प्रेरित किया। उन्होंने श्मशानों (CremationGround) की यात्रा की तथा विधवाओं के रिश्तेदारों को समझा कर उन्हें सती होने से रोकने के अथक प्रयास किये। उन्होंने समान विचारों वाले व्यक्तियों की सहायता से कई ऐसे समूहों का निर्माण किया जो उन लोगों पर कड़ी निगाह रखते थे, जो पुरातन अंधविश्वास या गहनों के लालच में विधवाओं की सती होने के लिये उकसाते थे।राजा राममोहन राय के अथक प्रयत्नों से इस दिशा में काफी प्रगति हुयी। उन्होंने सरकार से अपील की कि इस बर्बर प्रथा को रोकने के लिये वह कड़े कानून बनाये। इसी के पश्चात **1829 में लार्ड विलियम बैंटिक** ने **एक कानून बनाकर सती प्रथा को गैर-कानूनी** घोषित कर दिया।

राजा राममोहन राय ने स्त्रियों की हीन दशा का भी कट्टर विरोध किया। वे स्त्रियों की निम्न सामाजिक दशा तथा उनके साथ किये जा रहे भेदभाव से बहुत दुखी हुये। उन्होंने स्त्रियों को सम्पति का अधिकार देने की भी मांग की। वे स्त्रियों की शिक्षा देने, विधवा विवाह को प्रारंभ करने, सती प्रथा को समाप्त करने तथा बहु-पत्नी विवाह को गैर-कानूनी घोषित करने के पक्षधर थे। स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये उन्होंने मांग की कि उन्हें पैतृक एवं विरासत सम्पति संबंधी अधिकार मिलने चाहिए। राजा राममोहन राय आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार के समर्थक थे।

उन्होंने **डेविड हेअर** को **1817 में हिन्दू कालेज** की स्थापना में सहायता की तथा उसके द्वारा प्रस्तुत की गयी विभिन्न शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं का समर्थन किया। उन्होंने अपने खर्चे पर 1817 में कलकत्ता में अंग्रेजी स्कूल खोला जिसमें फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिकों दांते, रूसो एवं वाल्टेयर के दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। **1825 में उन्होंने वेदांत कालेज** की स्थापना की जिसमें भारतीय विद्या

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

और पाश्चात्य भौतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। बंगाली भाषा की समृद्ध बनाने हेतु उन्होंने **बंगला व्याकरण** की रचना की तथा बंगाली पद्य का निर्माण किया।

एच.सी.ई. जाचारियस के मतानुसार **आधुनिक भारत में हिन्दू धर्म, समाज, या राजनीति में से चाहे कोई क्षेत्र हो उसमें सुधार लाने का सूत्रपात्र राजा राममोहन राय ने ही किया**। संक्षेप में ब्रह्म समाज के योगदान को निम्न प्रकार से बिंदुसार किया जा सकता है-

1. बहुदेववाद तथा मूर्तिपूजा का विरोध।
2. बहुपत्नी प्रथा एवं सती प्रथा का विरोध।
3. विधवा विवाह का समर्थन एवं बाल विवाह का विरोध।
4. नैतिकता पर बल, कर्मफल में विश्वास, सर्वधर्म समभाव, निर्गुण ब्रह्म की उपासना।
5. धार्मिक पुस्तकों, पुरुषों एवं वस्तुओं की सर्वोच्चता में अविश्वास।
6. छुआछूत, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव का विरोध।
7. बांग्ला एवं अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार को समर्थन।

समाज सुधार के दृष्टिकोण से ब्रह्म समाज ने अनेक सिद्धांतों एवं अंधविश्वासों पर प्रहार किया। समाज ने हिन्दुओं द्वारा विदेश यात्रा को धर्म-विरुद्ध घोषित किये जाने की कड़ी आलोचना की। इसने समाज में स्त्रियों के उत्थान हेतु कार्य किया, सटी प्रथा का विरोध किया, पर्दा प्रथा को हटाने की मांग की, बल विवाह एवं बहुपत्नी विवाह को हतोत्ससित किया, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया एवं स्त्रियों की शिक्षा दिलाने जैसे कई महत्वपूर्ण कार्य किये। समाज ने जाति प्रथा तथा छुआछूत जैसी बुराइयों का भी विरोध किया। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में ब्रह्म समाज द्वारा किये गये कार्य अविस्मरणीय रहेंगे। [20]

प्रार्थना समाज

1867 में बंबई में केशवचंद्र सेन के सहयोग से **आत्माराम पाण्डुरंग ने प्रार्थना समाज की स्थापना** की। वर्ष 1849 में महाराष्ट्र में **परम हंस सभा** के नाम से धार्मिक समाज का शुभारंभ हुआ। यथार्थ में यह ब्रह्म समाज की ही एक शाखा थी लेकिन यह गुप्त समाज था जो मुख्यतः समाज सुधारक गतिविधियों पर ही अपना ध्यान केंद्रित करता था । इसका प्रभाव क्षेत्र काफी सीमित था। वर्ष 1860 में इस सभा का विघटन हो गया तथा इसी का परिवर्धित एवं संशोधित रूप 1867 में प्रार्थना समाज के रूप में सामने आया। ब्रह्म समाज के समान यह भी एक बौद्धिक एकतावादी संगठन था लेकिन इसमें धार्मिक सुधारों की अपेक्षा सामाजिक सुधारों पर अधिक बल दिया गया था। प्रार्थना समाज के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे-

1. जाति व्यवस्था को अस्वीकृति करना।
2. स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन।
3. विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहन।
4. लड़के एवं लड़की दोनों की विवाह की आयु में वृद्धि करना।

प्रार्थना समाज में अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सहभागिता थी, जिनमें **महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901), आर.जी. भंडारकर (1837-1925) एवं एन. जी. चंदावरकर (1855-1923)** प्रमुख थे।

यंग बंगाल आंदोलन तथा हेनरी विवियन डेरोजियो

19वीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में बंगाल के बुद्धजीवियों में एक रैडिकल या उग्रवादी प्रवृति का जन्म हुआ। यह प्रवृति राजा राममोहन राय के विचारों से भी ज्यादा आधुनिक एवं क्रांतिकारी थी। इस आंदोलन को ही **'यंग बंगाल आंदोलन'** के नाम से जाना जाता है। हिन्दू कालेज में 1826 से 1831 तक प्राध्यापक के रूप में कार्य करने वाले एक तरुण आंग्ल-भारतीय, हेनरी

IJIRSET

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

विनियम डेरोजियो इस आन्दोलन के प्रवर्तक एवं नेता थे। अदभुत प्रतिमा के धनी डेरोजियो, फ्रांस की क्रांति से गहरे प्रभावित थे तथा अतिवादी विचार रखते थे। उन्होंने एवं उनके अनुयायियों ने जर्जर एवं पुराने रीति रिवाजों का विरोध किया। अध्यात्मिक उन्नति और समाज सुधार के लिये उन्होंने 'एकेडमिक एसोसिएशन' और 'सोसाइटी फॉर द एक्वीजीशन ऑफ़ हिन्दू एसोसिएशन' जैसे कई संगठनों की स्थापना की। उन्होंने 'एंग्लो इंडियन हिन्दू एसोसिएशन', 'बंगहित सभा' और 'डिबेटिंग क्लब' का भी गठन किया। कट्टर हिन्दुओं से मतभेद के कारण 1831 में डेरोजियो को हिन्दू कालेज से निकाल दिया गया। इसके पश्चात वे 'ईस्ट इंडिया' नामक दैनिक समाचार पत्र का संपादन करने लगे। इस आंदोलन का प्रमुख केंद्र हिन्दू कालेज ही था। डेरोजियो के समर्थकों ने पुरानी एवं ह्रासोन्मुख प्रथाओं तथा सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठानों को घोर निंदा की तथा नारी शिक्षा की जोरदार वकालत की।

यंग बंगाल आंदोलन कई वर्षों तक चला। लेकिन प्रारंभ से ही हिन्दू कट्टपंथियों के विरोध एवं हिन्दू कालेज के प्रबंधकों द्वारा इस आंदोलन से सम्बद्ध विद्यार्थियों पर प्रतिबंध लगा दिये जाने से यह आंदोलन सफल नहीं हो सका। **1831 में ही डेरोजियो की मृत्यु** हो जाने से यह आंदोलन पूरी तरह बिखर गया। यद्यपि यह आंदोलन ज्यादा सफल नहीं रहा किंतु इसके बावजूद भी इसने राजा राममोहन राय के विचारों को आगे बढ़ाया तथा कई अन्य क्षेत्रों में प्रसंशनीय कार्य किये। **सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने इस आंदोलन को बंगाल में आधुनिक सभ्यता का जनक कहा है**।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

प्रसिद्ध विद्वान एवं समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर के व्यक्तित्व में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों का सुंदर समन्वय था। वे ऐसे उच्च नैतिक मूल्यों में विश्वास करते थे जो मानवतावाद के प्रति समर्पित तथा गरीबों के लिये उदार हो। 1850 में वे संस्कृत कालेज के प्रधानाचार्य बने। उन्होंने संस्कृत अध्ययन के लिये ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती दी तथा गैर-ब्राह्मण जातियों को संस्कृत अध्ययन के लिये प्रोत्साहित किया। उन्होंने संस्कृत शिक्षा के परम्परागत स्वरूप को समाप्त किया तथा संस्कृत कालेज में अंग्रेजी शिक्षा का प्रबंध किया, जिससे कालेज में आधुनिक दृष्टिकोण का प्रसार हो सके। उन्होंने संस्कृत शिक्षा को नया रूप प्रदान किया और इसे पढ़ाने के लिये नई तकनीक विकसित की। उन्होंने संस्कृत पढ़ाने के लिये बंगला भाषा में वर्ण-माला भी लिखी।विद्यासागर ने विधवा पुर्नविवाह के लिये एक सशक्त आंदोलन चलाया जिसके फलस्वरूप सरकार ने विधवा पुर्नविवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की। उन्होंने बहुपत्नी विवाह एवं बाल विवाह का भी कड़ा विरोध किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देने हेतु अथक प्रयत्न किया। वे कम से कम 35 बालिका विद्यालयों से समबद्ध थे, जिनमें से कई स्कूलों का संचालन वे स्वयं अपने खर्चे से करते थे। 1849 में स्थापित बेथुन स्कूल के सचिव के रूप में उन्होंने भारत में स्त्रियों के लिये उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये।[21]

बाल शास्त्री जाम्बेकर

ये भी एक प्रसिद्ध समाज सुधारक थे, जिनका कार्यक्षेत्र बंबई था। इन्होंने ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा हिन्दुत्व को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया। 1832 में उन्होंने साप्ताहिक पत्र दर्पण का प्रकाशन प्रारंभ किया।

विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं वैज्ञानिक समितियां

इन्हें **ज्ञान प्रकाश मंडलियों** के नाम से भी जाना जाता था। इनकी दो प्रमुख शाखायें थीं- पहली, मराठी एवं दूसरी, गुजराती। जिनका गठन 1848 में कुछ शिक्षित युवा भारतीयों द्वारा किया गया था। इन मंडलियों द्वारा सामाजिक प्रश्नों एवं लोकप्रिय विज्ञान पर व्याख्यानों का आयोजन किया जाता था। इनका प्रमुख उद्देश्य बालिकाओं को स्कूलों में प्रवेश लेने के लिये प्रोत्साहित करना था।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

परमहंस मंडलियां

1849 में महाराष्ट्र में अनेक परमहंस मंडलियों का गठन किया गया। इन मंडलियों के सदस्य केवल एक ही ईश्वर में विश्वास करते थे। वे जाति प्रथा की बुराई को समाप्त करना चाहते थे। इन मंडलियों की दावतों में निम्न जाति के लोगों द्वारा खाना बनाया जाता था तथा उसे ही मंडली का हर सदस्य ग्रहण करता था चाहे भले ही वो उच्च जाति का हो। इन मंडलियों ने स्त्री शिक्षा एवं विधवा पुर्नविवाह की भी वकालत की। बाद में महाराष्ट्र के अनेक स्थानों जैसे पूना, सतारा आदि में भी इन मंडलियों की शाखायें खुल गयीं।

सत्यशोधक समाज एवं ज्योतिबा फुले

ज्योतिबा फुले **माली जाति** में पैदा हुये थे। उन्होंने **सत्यशोधक समाज** की स्थापना की। इस समाज के नेता एवं सदस्य निम्न जाति के लोग थे। इस समाज का मुख्य उद्देश्य था-

1. सामाजिक सेवा।
2. स्त्रियों एवं निम्न जाति के लोगों के बीच शिक्षा का प्रचार करना।

फुले ने **सार्वजनिक सत्यधर्म के समर्थन** एवं **गुलामी** के विरुद्ध कार्य किया। उनके ये कार्य जनसामान्य के प्रेरणास्रोत बने। ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणों के प्रतीक चिन्ह 'राम' के विरोध में **राजा बालि** को अपने आदोलन का प्रतीक चिन्ह बनाया। फुले, समाज में जाति प्रथा के पूर्ण उन्मूलन एवं सामाजिक-आर्थिक समानता के पक्षधर थे। उन्होंने संस्कृत हिन्दुत्व का विरोध किया। उनके आंदोलन ने समाज में ब्राह्मणों के वर्चस्व को समाप्त कर दलितों की पहचान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्होंने पुरोहित वर्ग को समाज का शोषक कहा। उन्होंने अपनी पत्नी की सहायता से पूना में एक बालिका स्कूल की स्थापना की तथा महाराष्ट्र में अनेक स्थानों पर विधवा पुर्नविवाह का कार्यक्रम प्रारंभ किया।[13]

गोपालहरि देशमुख 'लोकहितवादी'

इन्होंने तार्किक सिद्धांतों तथा आधुनिक एवं मानवतावादी धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के आधार पर भारतीय समाज को पुर्नगठित करने की मांग की। उन्होंने हिन्दू रूढ़िवादिता की आलोचना की तथा सामाजिक एवं धार्मिक समानता पर बल दिया। उन्होंने घोषणा की कि 'यदि कोई धर्म समाज सुधार की अनुमति नहीं देता तो उस धर्म को परिवर्तित कर देना चाहिए'।

गोपाल गणेश अगरकर

ये सशक्त मानवीय तर्कों के समर्थक थे। इन्होंने परम्परागत मूल्यों एवं महत्वहीन प्रथाओं पर अंधविश्वास की तीव्र भर्त्सना की।

द सर्वेंट आफ इंडिया सोसायटी

इसकी स्थापना 1905 में कांग्रेस के उदारवादी नेता **गोपाल कृष्ण गोखले** ने की थी। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय मिशनरियों को देश की सेवा के लिये प्रशिक्षित करना, देश सेवा के कार्य को संवैधानिक तरीके भावना के साथ कार्य करने के लिये तैयार करना था। 1915 में गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु के पश्चात **श्रीनिवास शास्त्री** ने इसका अध्यक्ष पद संभाला।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

सोशल सर्विस लीग

इसकी स्थापना गोखले के समर्थक **नारायण मल्हार जोशी** ने बम्बई में की। इसका उद्देश्य सभी लोगों को जीवन एवं कार्य की बेहतर दशायें उपलब्ध कराना था। इस लीग ने कई स्कूलों, पुस्तकालयों, अध्ययन कक्षों, के एजेंट के रूप में कार्य करते थे तथा गरीबों एवं अशिक्षित लोगों को न्याय दिलाने हेतु उनकी ओर से पैरवी करते थे। झुग्गी-झोपड़ी में निवास करने वाले लोगों की सहायता, व्यायामशालाओं की स्थापना, नाट्य गृहों की स्थापना, जागरुकता बढ़ाने स्थापना, स्काउट सेवा दलों की स्थापना जैसे कार्य भी लीग द्वारा किये जाते थे। सोशल सर्विस लीग के संस्थापक **नारायण मल्हार जोशी ने ही 1920 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना** की।

रामकृष्ण आंदोलन

बंगाल में ब्रह्म समाज के प्रयत्नों से बौद्धिक वर्ग में एक नवीन चेतना जागृत हुयी तथा वे आडम्बरपूर्ण रीति रिवाजों से हटकर भक्ति एवं योग जैसे मार्गों को अपनाने लगे। **दक्षिणेश्वर (कलकत्ता)** के काली मंदिर के पुजारी **रामकृष्ण परमहंस (1834-86)** के उपदेशों ने रामकृष्ण आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। उन्होंने, चिंतन, सन्यास एवं भक्ति के परम्परागत तरीकों से धार्मिक मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर और धार्मिक मुक्ति पाने के कई मार्ग हैं, इन मार्गों में सबसे श्रेष्ठ मार्ग मानव सेवा है। क्योंकि मानव ईश्वर का मूर्त रूप है इसलिये मानव सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। उन्होंने अपनी नम्रता, मानवता और आध्यात्मिकता के द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालय के अनेक विद्यार्थियों को प्रभावित किया। इन्हीं विद्यार्थियों में से एक का नाम नरेंद्र दत था, जो आगे चलकर **विवेकानंद** के नाम से विख्यात हुये।

रामकृष्ण परमहंस ने, **परमहंस मठ** की स्थापना की। उन्होंने ध्यान एवं भक्ति को पाश्चात्यीकरण एवं आधुनिकीकरण के सम्मिलित प्रयोग के रूप में ईश्वरोपासना का उपाय बताया। उन्होंने कहा सभी धर्मो का आधार एक ही है। राम, हरि, ईशु, अल्लाह सभी एक ही ईश्वर के अलग-अलग नाम हैं तथा विभिन्न धर्मो में ईश्वर को पाने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं लेकिन उद्देश्य एक ही है। 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु हो गयी।[14,15]

स्वामी विवेकानंद का जन्म 1862 में हुआ। वे आधुनिक जिज्ञासा के कारण रामकृष्ण के संपर्क में आये तथा उनके शिष्य बन गये। इन्होंने रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों को लोगों के बीच प्रचारित किया तथा इन्हें तत्कालीन भृत्य समाज के अनुरूप ज्यादा प्रासंगिक बनाने का प्रयास किया। वे नव-हिन्दूवाद के उपदेशक के रूप में उभरे। **विवेकानंद** ने रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं एवं उपदेशों को प्रचारित करने के लिये **1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना** की। रामकृष्ण की शिक्षाओं, उपनषद एवं गीता के दर्शन तथा बुद्ध एवं यीशु के उपदेशों को आधार बनाकर विवेकानंद ने विश्व को मानव मूल्यों की शिक्षा दी। उन्होंने सामाजिक कर्म पर जोर दिया और कहा कि अगर ज्ञान के साथ जिस वास्तविक संसार में हम रहते हैं, उसमें कर्म न किया जाये तो ज्ञान निरर्थक है। विवेकानंद ने सर्वधर्म समभाव की घोषणा की और धार्मिक मामलों में किसी भी संकीर्णता की निंदा की।

1898 में उन्होंने लिखा हमारी मात्रभूमि के लिये विश्व के दो महान धर्मो, हिन्दू एवं मुस्लिम की प्रणालियों का संगम ही एक मात्र आशा है। उन्होंने हिन्दू धर्म के पृथकतावादी सिद्धांत की आलोचना की तथा 'उसके मुझे मत छुओ' के आदर्श को उसकी एक बड़ी भूल बताया। साधारण जनता के दुःख एवं कठिनाइयों से परिचित होने के लिये उन्होंने पूरे देश की यात्रा की तथा कहा 'जिस एक मात्र ईश्वर पर मैं विश्वास करता हूं...वह मेरा ईश्वर सब देशों का दुखी, पीड़ित और दरिद्रजन है'। उनके अनुसार, किसी भूखे को धार्मिक उपदेश देना, ईश्वर का अपमान करने जैसा है। उन्होंने देशवासियों से स्वतंत्रता, समानता एवं स्वतंत्र सोच धारण करने की अपील की।

विवेकानंद, एक महान मानवतावादी थे तथा उन्होंने रामकृष्ण मिशन के द्वारा मानवीय सहायता एवं सामाजिक कार्य को अपना सर्वप्रमुख उद्देश्य बनाया। मिशन ने सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के अनेक कार्य किये। उन्होंने कर्मफल की सर्वोच्चता को

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

प्रतिपादित करते हुये इसे ही सर्वश्रेष्ठ बताया। विवेकानंद ने जीव की सेवा की तुलना शिव की पूजा से की। उनके अनुसार जीवन स्वयं एक धर्म है। कर्म के द्वारा ही मानव का दैवीय अस्तित्व होता है। उन्होंने तत्कालीन तकनीक एवं आधुनिक विज्ञान का उपयोग मानवमात्र के कल्याण हेतु करने की महत्ता प्रतिपादित की। विवेकानंद ने अपने मानवतावादी और कार्य सम्बंधी विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिये देश के विभिन्न भागों में रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखायें स्थापित कीं। इस मिशन ने लोगों के लिये स्कूल, पुस्तकालय, दवाखाने, अनाथालय इत्यादि की स्थापना की। मिशन, विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं यथा-बाढ़, सूखे एवं महामारी इत्यादि में भी लोगों की सहायता के लिये कार्य करता था। मिशन ने अंतर्राष्ट्रीय संगठन का स्वरूप धारण किया। मिशन एक हिन्दू धार्मिक संगठन था किंतु इसने अन्य धर्मो को भी महान बताया।

यहाँ यह बात स्पष्ट है कि स्वामी दयानंद का नारा **वेदों की ओर लौटो** वैदिक शिक्षा एवं धर्म की वैदिक शुद्धता के लिये किया गया प्रयास है न कि वैदिक काल की पुर्नस्थापना। स्वामी दयानंद ने आधुनिकता एवं देशभक्ति के आदशों को अपनाने पर जोर दिया। आर्य समाज के 10 प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं-

1. वेद ही ज्ञान के स्रोत हैं अतः वेदों का अध्ययन आवश्यक है।
2. वेदों के आधार पर मंत्र-पाठ करना।
3. मूर्ति पूजा का खंडन।
4. तीर्थ यात्रा और अवतारवाद का विरोध।
5. कर्म, पुनर्जन्म एवं आत्मा के बारम्बार जन्म लेने पर विश्वास।
6. एक ईश्वर में विश्वास जो निरंकारी है।
7. स्त्रियों की शिक्षा को प्रोत्साहन।
8. बाल विवाह और बहुविवाह का विरोध।
9. कुछ विशेष परिस्थितियों में विधवा विवाह का समर्थन।
10. हिन्दी एवं संस्कृत भाषा के प्रसार को प्रोत्साहन।

आर्य समाज के प्रमुख सामाजिक उद्देश्य थे– ईश्वर के प्रति पितृत्व एवं मानव के प्रति भ्रातृत्व की भावना, स्त्री पुरुष के बीच समानता, सभी लोगों के बीच पूर्ण सरस्वती ने प्रमुख तत्कालीन समाज सुधारकों जैसे केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रानाडे, देशमुख इत्यादि से सम्पर्क स्थापित किया। दयानंद की मृत्यु के पश्चात् उनके आर्दशों को लाला हंसराज, पंडित गुरुदत्त, लाला लाजपत राय एवं स्वामी श्रद्धानंद इत्यादि ने आगे बढ़ाया।

आर्य समाज ने हिन्दू धर्म में आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास की भावना जागृत की तथा उसे पाश्चात्य जगत की श्रेष्ठता के भ्रम से मुक्त कराया। आर्य समाज के प्रयासों से इस्लामी एवं ईसाई मिशनरियों की हिन्दू धर्म विरोधी गतिविधियां सफल नहीं हो सकीं तथा हिन्दू धर्म अक्षुण बना रहा। दयानंद के **सत्यार्थ प्रकाश** नाम ग्रंथ में जन सामान्य की अनेक धार्मिक जिज्ञासाओं को दूर किया गया। इस ग्रंथ में हिन्दू धर्म की अनेक त्रुटियों पर प्रकाश डाला गया है तथा अन्य धर्म के पाखण्डों की भी निंदा की गयी है।[16]

सेवा सदन

एक पारसी धर्म सुधारक बहराम **जी. एम. मालाबारी** ने **1885** में **सेवा सदन** की स्थापना की। यह सदन, शोषित एवं समाज द्वारा तिरष्कृत महिलाओं के उत्थान के लिये प्रयत्न करता था। यह सभी जाति की महिलाओं के लिये शिक्षा, चिकित्सा सुविधायें एवं सामाजिक सेवा का कार्य करता था।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

देव समाज

इसकी स्थापना 1887 में शिव नारायण अग्निहोत्री ने लाहौर में की। इस समाज का मुख्य उद्देश्य आत्मा की शुद्धि, गुरु की श्रेष्ठता की स्थापना एवं अच्छे मानवीय कार्य करना था। इसने आदर्श सामाजिक व्यवहारों यथा-रिश्वत न लेना, मांसाहारी भोजन एवं मद्यपान का निषेध एवं हिंसात्मक कार्यों से दूर रहने इत्यादि को अपनाने पर जोर दिया। इस समाज की शिक्षाओं को **देव शास्त्र** नामक पुस्तक में संकलित किया गया है।

धर्म सभा

इसी स्थापना 1830 में राधाकांत देव ने की। यह एक रूढ़िवादी संस्था थी। इसने सामाजिक-धार्मिक मामलों में पुरातन एवं रूढ़िवादी तत्वों को संरक्षित करने का प्रयास किया। यहां तक कि इसने सती प्रथा को समाप्त किये जाने के प्रयासों का भी विरोध किया लेकिन सभा ने पाश्चात्य शिक्षा विशेषकर बालिकाओं में इसे प्रोत्साहित करने का समर्थन किया।

भारत धर्म महामंडल

यह भारत के शिक्षित रूढ़िवादी हिन्दुओं का एक संगठन था जिसका गठन आर्य समाज, थियोसोफिकल समर्थकों एवं रामकृष्ण मिशन से हिन्दू रूढ़िवादिता को बचाने के लिये किया गया था। 1895 में इसी प्रकार के एक अन्य संगठन सनातन धर्म सभा की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य भी हिन्दू रूढ़िवादिता के हितों को सुरक्षित रखने हेतु प्रयत्न करना था। दक्षिण भारत में धर्म महापरिषद एवं बंगाल में धर्म महामंडली की स्थापना भी इन्हीं उद्देश्यों के लिये की गयी। 1902 में इन सभी संगठनों में आपस में संयुक्त होकर एक बड़े संगठन भारत धर्म महामंडल की स्थापना की, जिसका मुख्यालय वाराणसी में था। इस संगठन ने हिन्दुत्व की रक्षा के प्रयास किये तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये हिन्दू धार्मिक सभाओं तथा हिन्दू शिक्षा संस्थानों इत्यादि की स्थापना की। इस महामंडल के सदस्यों में पंडित मदन मोहन मालवीय प्रमुख थे।[17]

राधास्वामी आदोलन

आगरा के एक बैंकर तुलसीराम ने, जिन्हें शिव दयाल साहब के नाम से भी जाना जाता था, 1861 में इस आंदोलन की शुरुआत की। इस आंदोलन के समर्थक-एक ही ईश्वर की सर्वोच्चता में विश्वास, गुरु की सर्वोच्चता में विश्वास, सत्संगों का आयोजन एवं सादगीपूर्ण सामाजिक जीवन में आस्था रखते थे। वे सांसारिक मायामोह से दूर रहने का भी प्रयत्न करते थे। इनके अनुसार सभी धर्म सत्य हैं। इस आंदोलन के अनुयायियों का दरगाह एवं अन्य धार्मिक स्थलों में जाने में विश्वास नहीं था तथा इसके वे सत्य एवं विश्वास तथा सेवा एवं प्रार्थना को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे।

श्री नारायनगुरु घर्मपरिपालन आंदोलन (एस.एन.डी.पी.एम.)

यह आंदोलन एक क्षेत्रीय आंदोलन था, जिसका जन्म समाज के दलित वर्ग एवं ब्राह्मण वर्ग में टकराव के कारण हुआ। इस आंदोलन की शुरुआत केरल के **इजर्यावस जाति** के श्री नारायण गुरु स्वामी ने की। इजर्यावस केरल की सबसे बड़ी दलित जाति है, जिसे अछूत माना जाता था। यह राज्य की कुल जनसंख्या का 26 प्रतिशत थी। इस जाति के लोग मुख्यतः ताड़ी (शराब) बेचने का काम करते थे । 1902 में इसी समुदाय के श्री नारायण गुरु ने एक आंदोलन प्रारंभ किया तथा नारायण गुरु धर्म परिपालन योगम की शुरुआत की। इस योगम के कई उद्देश्य थे यथा-

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

1. शिक्षा संस्थाओं में इस समुदाय के छात्रों को प्रवेश का अधिकार दिलाना।
2. सरकारी सेवाओं में भर्ती।
3. मंदिरों में प्रवेश।
4. राजनीतिक प्रतिनिधित्व इत्यादि।

इस आंदोलन की फलस्वरूप केरल में दलितों को अनेक अधिकार प्राप्त हुये, हुआ। दलितों को उनके सामाजिक अधिकार दिलाने में इस आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान रहा।[18]

वोक्कालिग संघ

इस आंदोलन की शुरुआत 1905 में मैसूर में हुयी। यह एक ब्राह्मण विरोधी आंदोलन था।

न्याय आंदोलन या जस्टिस आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत सी.एन. मुदलियार, टी.एम. नायर एवं पी. त्यागराज ने मद्रास में की। इस आंदोलन का उद्देश्य गैर-ब्राह्मण जातियों का विधायिका में प्रतिनिधित्व बढ़ाना था। **1917 में मद्रास प्रेसीडेंसी एसोसिएशन** का गठन किया गया, जिसने विधायिका में निम्न जाति के लोगों के लिये पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की।

आत्म-सम्मान आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत 1920 के दशक में इं. वी. रामास्वामी नायकर एवं बालीजा नायडू ने की। इसने समाज में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा लोगों से ब्राह्मणवाद का विरोध करने के लिये आगे आने का आह्वान किया। इसने पिछड़ी जाति के लोगों को विभिन्न अधिकार एवं प्रतिनिधित्व देने की मांग की। आंदोलन के अनुयायियों ने कहा कि धार्मिक कर्मकांडों में ब्राह्मणों की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है। उन्होंने लोगों से अपील की कि वे विवाह के अवसर पर विभिन्न पूजाओं के लिये ब्राह्मणों को आमंत्रित न करें।

अरवीप्पुरम आंदोलन

सन् 1888 में शिवरात्रि के अवसर पर **श्री नारायन गुरु** ने पिछड़ी जाति का होने के बावजूद केरल के अरवीप्पुरम नामक स्थान में भगवान शिव की प्रतिमा स्थापित की तथा कहा देवताओं की पूजा एवं आराधाना में ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं है। उन्होंने स्थानीय मंदिर की दीवार पर लिखा कि 'जातीयता एवं प्रजातीयता को बढ़ने वाली दीवार को गिरा दो, आपसी घृणा को दूर करो, सद्भाव बढ़ाओ, हम सभी यहां भाई-भाई की तरह रहेंगे' ।

इस आंदोलन का दक्षिण भारत में दूरगामी प्रभाव हुआ। इसने दक्षिण भारत के लोगों में एक नई चेतना जागृत की तथा इस क्षेत्र में अनेक आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की। बाद में होने वाले अनेक आंदोलन विशेषकर **मंदिर प्रवेश आंदोलन** इस आंदोलन से प्रेरित थे।[19]

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

मंदिर प्रवेश आंदोलन

तत्कालीन अनेक समाज सुधारक तथा बुद्धिजीवियों जैसे **श्री नारायण गुरु, एन. कुमारन असन, टी.के. माधवन** इत्यादि पहले ही इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर चुके थे। **1924 में के.पी. केसव** के नेतृत्व में केरल में **वाइकोम सत्याग्रह** प्रारंभ हुआ जिसने सार्वजनिक मार्गों एवं हिन्दू मंदिरों में दलितों को प्रवेश का अधिकार दिये जाने की मांग की। पंजाब में जाटों एवं मदुरई के भी स्थानीय निवासियों ने इस सत्याग्रह के माध्यम से समान अधिकारों की मांग की। महात्मा गांधी ने इस आंदोलन के समर्थन में केरल की यात्रा की तथा सत्याग्रहियों की मांगें पूरी किये जाने की अपील की।

पुनः 1931 में जब सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित हो गया, केरल में मंदिर प्रवेश आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। के. केलप्प्न एवं केरल के प्रख्यात कवि सुब्रह्मण्यम तिरुमाम्बू ने गुरुवयूर नामक स्थान पर 16 स्वयंसेवी कार्यकर्ताओं के दल का नेतृत्व किया। प्रसिद्ध सामाजिक सुधारकों जैसे- पी.कृष्णा पिल्लई एवं ए.के. गोपालन ने भी इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभायी। अंततः इस आंदोलन को एक महत्वपूर्ण सफलता तब हाथ लगी, जब 1936 में ट्रावनकोर के महाराजा ने एक राजाज्ञा जारी करके सभी सरकार नियंत्रित मदिरों को सभी जातियों के लिये खोल दिया। इसी तरह का आदेश 1938 में सी.राजगोपालाचारी की सरकार ने मद्रास में भी जारी किया।

इंडियन सोशल कांफ्रेंस

इसकी स्थापना **एम.जी. रानाडे एवं रघुनाथ राव** ने की थी। इस कांफ्रेंस का प्रतिवर्ष एक सम्मेलन होता था। इसका पहला सम्मेलन 1887 में मद्रास में हुआ। संयोग से इसी समय मद्रास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। इसने सामाजिक महत्व के विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। वास्तव में यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की समाज सुधारक शाखा ही थी क्योंकि इस कांफ्रेंस के सभी प्रमुख नेता कांग्रेस से समबद्ध थे। इस कांफ्रेंस के मुख्य उद्देश्यों में- अंतर-जातीय विवाह को प्रोत्साहन, बहुपत्नी प्रथा का विरोध एवं कुलीन प्रथा का विरोध प्रमुख थे। इसने बाल विवाह को रोकने के लिये **याचना अभियान** भी चलाया, जिसमें लोगों से याचना की जाती थी कि वे बाल विवाह न करें।[20]

वहाबी आंदोलन

मुसलमानों की पाश्चात्य प्रभावों के विरुद्ध सर्वप्रथम जो प्रतिक्रिया हुयी, उसे ही वहाबी आंदोलन या **वलीउल्लाह आंदोलन** के नाम से जाना जाता है। वास्तव में यह एक पुनर्जागरणवादी आंदोलन था। शाह वलीउल्लाह (1702-62) अठारवीं सदी में मुसलमानों के वह प्रथम नेता थे, जिन्होंने भारतीय मुसलमानों में हुयी गिरावट में चिंता प्रकट की। उन्होंने भारतीय मुसलमानों के रीति-रिवाज तथा मान्यताओं में व्याप्त कुरीतियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

इसके पश्चात शाह अब्दुल्ला अजीज तथा सैय्यद अहमद बरेलवी (1786-1831) ने वलीउल्लाह के विचारों को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। शाह अब्दुल अजीज ने हिंदुस्तान को दारुल-हर्ब (काफिरों का देश) से दारुल-इस्लाम बनाने का आह्वान किया। प्रारंभ में यह अभियान सिख सरकार के खिलाफ था परंतु 1849 में अंग्रेजों द्वारा पंजाब का विलय करने पर यह अंग्रेजों के विरुद्ध हो गया। यह आंदोलन 1870 तक चलता रहा जब तक कि इसे सैन्य बल द्वारा समाप्त नहीं कर दिया गया। सैय्यद अहमद का यह दल उग्र था। इसका केंद्र पटना था।

IJIRSET

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

टीटू मीर का आंदोलन

वहाबी आंदोलन के संस्थापक सैय्यद अहमद बरेलवी के शिष्य, मीर निथार अली, जिन्हें टीटू मीर के नाम से भी जाना जाता था, ने इस आंदोलन का प्रवर्तन किया। टीटू मीर ने बंगाल के मुसलमान किसानों को हिन्दू जमींदारों एवं अंग्रेज निल सौदागरों के सिरुद्ध संगठित किया। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने इस आंदोलन को आतंकवादी या हिंसक नहीं माना किंतु आदोलन के अंतिम वर्षों विशेषकर उस वर्ष जब टीटू मीर का निधन हुआ इसके कार्यकर्ताओं एवं पुलिस में अनेक झड़पें हुयीं। 1831 में इसी प्रकार की एक मुठभेड़ में टीटू मीर का निधन हो गया।

फराजी आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत हाजी शरियत-अल्लाह ने की थी। इस आंदोलन को 'फराइदी आंदोलन' के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसका मुख्य जोर इस्लाम धर्म की सच्चाई पर था। इस आंदोलन का कार्य क्षेत्र मुख्यतः पूर्वी बंगाल था तथा इसका मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र की मुस्लिम आबादी को सामाजिक भेदभाव एवं शोषण से बचाना था। हाजी शरियत अल्लाह के पुत्र दूदू मियां के नेतृत्व में 1840 के पश्चात आंदोलन ने क्रांतिकारी रुख अख्तियार कर लिया। दूदू मियां ने आंदोलन को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने इसे गांव से लेकर प्रांतीय स्तर तक संगठित किया। उन्होंने संगठन के प्रत्येक स्तर पर एक प्रमुख नियुक्त किया। इस आंदोलन ने सशस्त्र कार्यकर्ताओं का एक दल तैयार किया जिसका कार्य हिन्दू जमींदारों एवं पुलिस के विरुद्ध संघर्ष करना था।

दूदू मियां को अनेक बार पुलिस ने गिरफ्तार किया किंतु 1847 में दूदू मियां की लंबी गिरफ्तारी के पश्चात आदोलन कमजोर हो गया। 1862 में दूदू मियां की मृत्यु के बाद भी, आंदोलन चलता रहा किंतु किसी बड़े राजनैतिक प्रश्रय के अभाव में इसकी पहचान एक क्षेत्रीय धार्मिक आंदोलन के रूप में सिमट कर रह गयी।

अहमदिया आंदोलन

19वीं शताब्दी में मुस्लिम समाज और धर्म सुधार के लिये एक और आंदोलन चला, जिसे अहमदिया आंदोलन कहते हैं। सन् 1889 में मिर्जा गुलाम अहमद ने इस आंदोलन की शुरुआत की। यह आंदोलन उदार सिद्धांतों पर आधारित था। इसके नेता अपने को हजरत मुहम्मद की तरह का अवतार मानते थे। आंदोलन, मुस्लिम समाज में सुधार लाने एवं उसमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के कार्य को अपना सर्वप्रमुख उद्देश्य मानता था। इसने गैर-मुसलामनों के प्रति युद्ध **जेहाद** को बंद किये जाने की मांग की। आंदोलन ने भारतीय मुसलमानों के मध्य गुरुदासपुर जिले के **कादिया नगर** से प्रारंभ हुआ था। मिर्जा गुलाम अहमद ने अपने सिद्धांतों की व्याख्या अपनी पुस्तक **बराहीन-ए-अहमदिया** में की है।

सर सैय्यद अहमद खान एवं अलीगढ़ आंदोलन

1857 के विद्रोह के पश्चात अंग्रेजी सरकार यह मानने लगी कि इस विद्रोह में मुख्य षड्यंत्रकर्ता मुसलमान थे। कालांतर में बहावी आंदोलन के प्रति सरकार विरोधी रुख से यह धारणा और बलवती हो गयी। किंतु बाद में ब्रिटिश सरकार यह महसूस करने लगी कि उस समय राष्ट्रवादी आंदोलन की गति जिस तरह से जोर पकड़ने लगी थी उसका सामना करने के लिये शीघ्र ही कोई कदम उठाना अपरिहार्य हो गया था। इन्हीं परिस्थितियों में बढ़ते हुये राष्ट्रवाद का मुकाबला करने के लिये सरकार ने मुसलामनों को सहयोगी के रूप में इस्तेमाल करने का निश्चय किया। लेकिन यह सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता था जब मुसलमानों को सशक्त बौद्धिक विचारों से प्रभावित किया जाये। इस समय मुसलमानों का एक वर्ग, जिसका नेतृत्व सर सैय्यद अहमद खान कर रहे थे, सरकारी संरक्षण एवं सहयोग प्राप्त करने के पक्ष में था, जिससे मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार कर रोजगार वृद्धि की जाये, ताकि मुस्लिम समाज की दशा में सुधार हो सके।[21]

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

उन्होंने अपने विचारों का प्रचार **तहजीब-उल-अखलाक** नामक पत्रिका में किया।

अलीगढ़-आंदोलन ने शिक्षित मुसलमानों के बीच उदार एवं आधुनिक पद्धति का विकास किया, जो कि मोहम्डन एंग्लो-ओरिएंटल कालेज अलीगढ़ पर आधारित था। इसके मुख्य उद्देश्यों में-

1. इस्लाम के दायरे में रहकर भारतीय मुसलमानों के बीच आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना
2. मुस्लिम समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे-पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, दास प्रथा, तलाक इत्यादि के क्षेत्र में सुधार लाना था।

इस आंदोलन के समर्थकों की विचारधारा कुरान की उदार व्याख्या पर आधारित थी। इन्होंने मुस्लिम समाज में आधुनिक एवं उदार संस्कृति को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया। वे आधुनिक पथ पर चलकर इस्लामिक समाज का आधुनिकीकरण करना चाहते थे। इस प्रकार अलीगढ़ आंदोलन तत्कालीन समय में मुस्लिम सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों का केंद्र बन गया।

देवबंद स्कूल

यह भी एक प्रकार का मुस्लिम धार्मिक आंदोलन था जिसे मुस्लिम धर्म के रूढ़िवादी उलेमाओं द्वारा प्रारंभ किया था। इस आंदोलन के दो मुख्य उद्देश्य थे-

1. कुरान एवं हदीस की शिक्षाओं का मुसलमानों के मध्य प्रचार-प्रसार करना
2. विदेशी आक्रांताओं एवं गैर-मुसलमानों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध 'जेहाद' को प्रारंभ रखना।

देवबंद स्कूल की स्थापना, तत्कालीन सयुंक्त प्रांत के सहारनपुर जिले में देवबंद नामक स्थान में **1866 में मोहम्मद कासिम नानोतवी (1832-80) एवं राशिद अहमद गंगोही (1828-1905) ने संयुक्त रूप से की थी**। ये दोनों मुस्लिम समुदाय के धार्मिक नेता थे। यह आंदोलन, अलीगढ़ आंदोलन के विरुद्ध था। इसने अलीगढ़ आंदोलन द्वारा मुस्लिम समाज का पाश्चात्यीकरण करने एवं उदार रुख अपनाने के रवैये का कदा विरोध किया तथा मुस्लिम समुदाय का नैतिक एवं धार्मिक उत्थान करने की वकालत की। इसने अलीगढ़ आंदोलन के अनुयायियों द्वारा अंग्रेज सरकार का समर्थन करने के कार्य की भी निंदा की।[2]

पारसी सुधार आंदोलन

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त पारसियों के एक समुदाय ने 1851 में **रहनुमाई माजदयासन सभा** गठित की। इसका उद्देश्य पारसी समाज का पुर्नरुद्धार तथा पारसी धर्म की प्राचीन सभ्यता को पुर्नःस्थापित करना था। इस आंदोलन के नेताओं में **नैरोजी फरदोनजी, दादाभाई नौरोजी, के.आर. कामा एवं एस.एस. बंगाली** प्रमुख थे। इस सभा के संदेशों को पारसियों तक पहुंचाने के लिये एक पत्रिका **रास्त गोफ़्तार** प्रारंभ की गई। पारसी धर्म की मान्यताओं एवं रीति-रिवाजों में इस सभा ने अनेक परिवर्तन एवं सुधार किये। इसने पारसी महिलाओं की स्थिति सुधारने का भी प्रयास किया तथा विभिन्न बुराइयों जैसे- पर्दा प्रथा इत्यादि का विरोध किया। सभा, स्त्रियों के विवाह की आयु में वृद्धि तथा स्त्रियों में शिक्षा को बढ़ावा देने की पक्षधर थी। कुछ समय पश्चात भारतीय समाज में पारसी एक नये पाश्चात्य सभ्यता से ओत-प्रोत कारक के रूप में सामने आये।

सिख सुधार आंदोलन

19वीं शताब्दी में भारत में चल रहे विभिन्न धर्म एवं समाज सुधार आंदोलनों से सिख समुदाय भी अछूता न रहा सका तथा इसमें भी विभिन्न समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन प्रारंभ हुये। 1873 में अमृतसर में **सिंह सभा** आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसके दो मुख्य दो उद्देश्य थे-

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

1. सिखों के लिये आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा की उपलब्धता सुनिश्चित करना
2. सिख धर्म के हितों को नुकसान पहुँचाने वाली मिशनरियों. एवं हिन्दू रुढ़िवादियों के विरुद्ध संघर्ष करना।

अपने प्रथम उद्देश्य की पूर्ति के लिये सभा ने पूरे पंजाब में खालसा स्कूलों की स्थापना की। लेकिन सिंह सभा के प्रयासों में गतिशीलता तब आयी जब **अकाली आंदोलन** प्रारंभ हुआ। अकाली आंदोलन, सिंह सभा की ही शाखा थी। अकालियों का मुख्य उद्देश्य गुरुद्वारों का प्रबंध सुधारना था। वे गुरुद्वारों को उन भ्रष्ट उदासी महन्ती से मुक्त कराना चाहते थे, जो सरकारी-संरक्षण की आड़ में विभिन्न प्रकार के भ्रष्ट कायों में लिप्त थे। 1921 में अकालियों ने एक नया असहयोग एवं अहिंसक आंदोलन प्रारंभ किया। लेकिन अकालियों को प्रमुख सफलता तब मिली जब 1922 में (1925 में संशोधित) बहुप्रतीक्षित एवं लोकप्रिय 'सिख गुरुद्वारा एक्ट' पास हुआ। इस एक्ट द्वारा गुरुद्वारों का प्रबंध सिखों की शीर्ष संस्था 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति' को सौंप दिया गया।

अकाली आंदोलन एक क्षेत्रीय आंदोलन था लेकिन यह साम्प्रदायिक नहीं था। कालांतर में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी समय-समय पर अकाली नेताओं ने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध आवाज उठायी तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष में सराहनीय भूमिका अदा की।[3]

थियोसोफिकल आंदोलन

इस आंदोलन की शुरुआत दो पाश्चात्य **मैडम एच.पी. ब्लावैटस्की** (1831-1891) एवं **कर्नल एम.एस. अलकाट** ने की। ये दोनों भारतीय विचारों एवं भारतीय संस्कृति से गहरे प्रभावित थे। 1875 में अमेरिका में इन्होंने 'थियोसोफिकल सोसायटी' की स्थापना की। किंतु 1882 में इन्होंने सोसायटी का मुख्यालय मद्रास के निकट अडयार नामक स्थान में परिवर्तित कर दिया। इसके अनुयायी ईश्वरीय ज्ञान को आत्मिक हर्षोन्माद एवं अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त करने की कोशिश करते थे। उनका मानना था कि ध्यान, योग एवं चिंतन जैसे माध्यमों द्वारा व्यक्ति की आत्मा को परमात्मा से जोड़ा जा सकता है। वे हिन्दू धर्म के पुर्नजन्म एवं कर्म के सिद्धांत पर भी विश्वास करते थे। उन्होंने उपनिषद, सांख्य, योग एवं वेदांत के विचारों को अति महत्वपूर्ण बताया। सोसायटी का उद्देश्य प्रजाति, नस्ल, लिंग, जाति एवं रंग में भेदभाव किये बिना सभी लोगों के कल्याण के लिये प्रयत्न करना था। इसने प्रकृति एवं मानव शक्ति के अनसुलझे रहस्यों की भी व्याख्या करने का प्रयास किया। सोसायटी ने मुख्यतः हिन्दू धर्म की प्राचीन विरासत एवं पहचान को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया।

भविष्य का दायरा

सुधार आंदोलनों का योगदान या सकारात्मक प्रभाव

समाज के रूढ़िवादी वर्ग ने विभिन्न समाज सुधारकों के द्वारा वैज्ञानिक विचारधारा को सामाजिक-धार्मिक स्वरूप देने के प्रयासों का अत्यंत कड़ा विरोध किया। इसके कारण अनेक समाज सुधारकों को अपमानित होना पड़ा, उनकी निंदा की गयी, उन पर अभियोग लगाये गये, उनके विरुद्ध फतवे जारी किये गये तथा कुछेक की तो हत्या करने की चेष्टा भी की गयी। किंतु तीव्र विरोधों के बावजूद भी इन सुधार आंदोलनों ने लोगों में स्वतंत्रता एवं समानता का भाव जागृत किया। इसने लोगों को यह महसूस करने हेतु प्रेरित किया कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है, इसलिये स्वतंत्रता का अधिकार उसे ईश्वर प्रदत्त है तथा कोई भी व्यक्ति, समाज या शासन इस पर रोक नहीं लगा सकता। आंदोलन ने समाज में पुरोहितों के एकाधिकार को कड़ी चुनौती दी। धार्मिक ग्रंथों के विभिन्न भाषाओं में किये गये अनुवाद जिससे लोग विभिन्न धर्मो का अध्ययन कर सके तथा उनमें यह विश्वास जागा कि धार्मिक रीति-रिवाजों के पालन एवं धार्मिक अनुवाद का कार्य प्रत्येक मनुष्य स्वयं कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह ईश्वर की उपासना या चिंतन कर सकता है तथा इस कार्य के लिये उसे किसी मध्यस्त की जरूरत नहीं है। इसने लोगों में किसी भी नियम की तर्क-वितर्क के आधार पर परखने की समझ विकसित की। सुधार आंदोलनों ने विभिन्न धर्म के लोगों को उनकी समृद्ध धार्मिक विरासत से अवगत कराया जिससे उनमें यह हीन भावना दूर हो सके कि उनका धर्म पिछड़ा हुआ या अविकसित है। इसने मध्य वर्ग में नई समझ एवं चेतना जागृत की तथा उसके उदय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

सुधार आंदोलनों का नकारात्मक प्रभाव

19वी सदी के सुधार आंदोलन मुख्यतः शहरी मध्यम एवं उच्च वर्ग तक ही सीमित रहे तथा कोई भी आन्दोलन देश के गाँव और किसानों तथा शहरों के गरीब लोगों तक नहीं पहुंच सका। इसके अतिरिक्त आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने पीछे देखने या अतीत की महानता और अपने-अपने धर्मग्रंथों से प्रमाण देने की प्रवृत्ति का सहारा लिया। उनकी इन प्रवृति ने लोगों में साम्प्रदायिकता के आधार पर विभाजित होने की गलत परम्परा को अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा दिया। अनेक इतिहासकारों का मत है कि देश में अन्य अनेक कारणों के साथ-साथ इन आंदोलनों ने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया।सुधार-आंदोलनों में संस्कृति के कुछ चुनिंदा पहलुओं को ज्यादा महत्व दिये जाने से संस्कृति के अन्य क्षेत्र जैसे- स्थापत्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला इत्यादि उपेक्षित हुये। हिन्दू समाज सुधारक अपनी विचारधारा में प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति में ही संकुचित होकर रह गये तथा उन्होंने मध्यकालीन इतिहास को बिल्कुल भुला दिया, जबकि भारतीय इतिहास में मध्यकाल का अपना एक विशेष स्थान है गुणगान करने से वे जातियां इसके विरुद्ध हो गयीं जिनके पूर्वज प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के शोषण एवं उत्पीड़न के शिकार रहे थे।

प्राचीन काल में पुरोहितों का सामाजिक एकाधिकार एवं वर्चस्व था। इसके कारण भी कई जातियां विशेष रूप से निम्न जातियां इन आंदोलनों में सक्रिय नहीं हुयी। कई मुस्लिम मध्यवर्गियों ने मुस्लिम समाज का पाश्चात्यीकरण किये जाने के केवल अपने धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने के प्रयास से साम्प्रदायिक सौहार्द को धक्का लगा लोगों आपसी में आपसी भाईचारा कम हुआ। कालांतर में इसी मनोधारणा से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने भारतीय समाज को विभाजित करने के कुत्सित प्रयत्न प्रारंभ कर दिये जिसकी दुखद परिणती देश के विभाजन के रूप में सामने आयी।[21]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1) Klaus Klostermaier, A survey of Hinduism,, SUNY Press, ISBN 0-88706-807-3, Chapter 3: Hindu dharma
2) ↑ जैन २०११, पृ° १२८.
3) बीबीसी पार्श्वक Archived 2012-02-02 at WebCite, भारत
4) ↑ "बीबीसी, धर्म और नैतिकता, हिंदू धर्म". मूल से 28 अक्तूबर 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 28 अक्तूबर 2006.
5) ↑ Bayly, Susan (1999). Caste, Society and Politics in India from the Eighteenth Century to the Modern Age. Cambridge University Press. डीओआइ:10.2277/0521264340. ISBN 978-0-521-26434-1. मूल से 13 अक्तूबर 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 8 जून 2009. नामालूम प्राचल `|month=` की उपेक्षा की गयी (मदद)
6) ↑ "Caste-Based Parties". मूल से 12 अक्तूबर 2011 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2007-05-17.
7) ↑ "ब्राह्मण."विश्वकोश ब्रिटानिका.२००८ ब्रिटैनिका विश्वकोश ऑनलाइन.
8) ↑ http://www.jamaica-gleaner.com/gleaner/20050215/life/life1.html Archived 2008-12-04 at the Wayback Machine कीशा शेक्सपियर की प्रेम बनाम तयशुदा शादी
9) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 26 मई 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 8 जून 2009.
10) "नारायण, केलकर और शास्त्री को ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए चुना[मृत कड़ियाँ]" आकाशवाणी, २२ नवम्बर २००८.
11) ↑ इस तक ऊपर जायें:अ आ Dr. Jytosna Kamat. "Purandara Dasa". Kamats Potpourri. मूल से 15 अगस्त 2009 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2006-12-31.
12) ↑ Madhusudana Rao CR. "Sri Purandara Dasaru". Dvaita Home Page. मूल से 30 नवंबर 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2006-12-31.
13) ↑ S. Sowmya, K. N. Shashikiran. "History of Music". Srishti's Carnatica Private Limited. मूल से 2 फ़रवरी 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2006-12-31.
14) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 30 नवंबर 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 8 जून 2009.

ISSN(Online) : 2319-8753
ISSN (Print) : 2347-6710

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 4, Issue 4, April 2015

15) ↑ Madhusudana Rao CR. "Sri Purandara Dasaru". Dvaita Home Page (www.dviata.org). मूल से 30 नवंबर 2006 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2006-12-31.
16) ↑ ""दक्षिण एशियाई कला: शास्त्रीय नृत्य के प्रकार और तकनीके "". मूल से 7 जनवरी 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 8 जून 2009.
17) ↑ Māni Mādhava Chākyār (1996). Nātyakalpadrumam. Sangeet Natak Akademi, नई दिल्ली.पी . ६
18) ↑ http://sites.google.com/site/natyacharya/articlesके[मृत कड़ियाँ]. ए. चन्द्रहासन, इन परस्युट ऑफ़ एक्स्सेलेंस यानि उत्कृष्टता की खोज में(प्रदर्शन कला), "द हिन्दू", रविवार मार्च २६, १९८९
19) ↑ मणि माधव चक्क्यर: द मास्टर एट वर्क (फिल्म-अंग्रेजी), कवलम एन. पनिकर, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली, १९९४
20) ↑ इस तक ऊपर जायें:अ आ कामथ (२००३), पी२८२
21) ↑ "A Snapshot of Indian Television History". Indian Television Dot Com Pvt Ltd. मूल से 4 अक्तूबर 2012 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 2006-06-01.